2000(12) eILR(PAT) SC 1

बिहार राज्य

बनाम्

चंद्र भूषण सिंह और अन्य

दिसंबर, 13,2000

[के. टी. थॉमस और आर. पी. सेठी, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973/रेलवे संपत्ति (गैरकानूनी कब्जा) अधिनियम, 1966-धारा 2 (डी), 173,200 और 204/धारा 8 (1) - प्रतिवादी रेलवे अधिकारी अवैध रूप से बिक्री के लिए सीमेंट ले जाते हुए पकड़े गए-आरोप साबित करने वाली पूछताछ-रेलवे सुरक्षा बल के उवर निरीक्षक ने न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में जांच रिपोर्ट दायर की-प्रतिवादीयों ने उक्त अवर-निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र को चुनौती दी कि वह धारा 173 के अर्थ के तहत "पुलिस अधिकारी" नहीं है-मजिस्ट्रेट ने उक्त चुनौती को खारिज कर दिया-उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा दायर मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द करने के लिए याचिका को स्वीकार कर लिया-अपील पर, अभिनिर्धारितआर. पी. एफ. के जांच अधिकारी द्वारा की जा रही जांच का केवल यह तथ्य कि उसके पास कुछ समान शक्तियां हैं जो एक जांच अधिकारी के पास हैं, शिकायत को संहिता की धारा 173 के तहत एक प्रतिवेदन नहीं बनाएगा-जांच रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि यह संहिता की धारा 173 के अर्थ के तहत एक प्रतिवेदन नहीं थी, बल्कि संहिता की धारा 200 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर एक शिकायत थी-एक पुलिस प्रतिवेदन भी एक मानित शिकायत है यदि पुलिस द्वारा जांच एक गैर-संज्ञेय अपराध का है। इस अधिनियम के तहत वैसे अपराध भी गैर-संज्ञेय हैं जिनकी जांच दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक पुलिस अधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती है-इस प्रकार, अधिनियम के तहत एक अपराध के लिए जांच की शुरुआत केवल आर. पी. एफ. के एक अधिकारी द्वारा शिकायत के आधार पर हो सकती है।

प्रतिवादीगण भारतीय रेलवे के कर्मचारी हैं, जिन्हें 1987 में अवैध रूप से बिक्री के लिए रेलवे सीमेंट ले जाते समय रंगे हाथों पकड़ा गया था। एक जांच की गई जिसमें अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ रेलवे संपत्ति (गैरकानूनी कब्जा) अधिनियम, 1966 के तहत आरोप साबित हुआ। रेलवे सुरक्षा बल के एक निरीक्षक द्वारा न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी के न्यायालय में अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ एक जांच रिपोर्ट (शिकायत) दायर की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने इस आधार पर अपने आरोपमुक्त करने का अनुरोध करते हुए एक आवेदन मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर किया कि उनके खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत करने वाला अवर-निरीक्षक, आर. पी. एफ. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अर्थ में "पुलिस अधिकारी" नहीं था। नतीजतन, उनके अनुसार, मजिस्ट्रेट के समक्ष अदालत में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट पर संज्ञान लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।मजिस्ट्रेट द्वारा उक्त आवेदनों को खारिज किए जाने पर, अभियुक्त व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय में याचिकाएं दायर कीं। मजिस्ट्रेट के उस आदेश को निरस्त करने के लिए जिसकी अनुमति दी गई थी। इसलिए ये अपील याचिकाये दायर की गयी।

प्रतिवादीयों ने यह स्वीकार करते हुए कि उच्च न्यायालय के आदेश की चुनौती अनुचित थी, प्रतिवादियों ने प्रार्थना की कार्यवाही को रद्द करने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष कई अन्य तर्क उठाए थे। यह न्यायालय या तो ऐसी याचिकाओं पर निर्णय लेने की वांछनीयता पर विचार कर सकता है या रिमांड पर ले सकता है। उठाए गए लेकिन निर्णय नहीं किए गए बिंदुओं पर निर्णय के लिए मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेज सकता है।

अपीलों को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अवधारित कियाः

1. शिकायत का अवलोकन स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अर्थ के भीतर एक रिपोर्ट नहीं थी, बल्कि मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर एक शिकायत थी, जाहिर तौर पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के तहत। ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त के खिलाफ प्रक्रिया दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के तहत जारी की गई है। केवल इसलिए कि जांच रेलवे सुरक्षा बल के किसी सदस्य द्वारा की गई थी, जिसके पास कुछ समान शक्तियां हैं जो एक जांच अधिकारी के पास हैं, शिकायत को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अर्थ के भीतर एक रिपोर्ट नहीं बनाएगा। [664-ए, बी]

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2 (घ) में एक पुलिस प्रतिवेदन को एक मानित शिकायत के रूप में भी शामिल किया गया है यदि मामले की जांच एक पुलिस अधिकारी द्वारा एक गैर-संज्ञेय अपराध से जुड़े मामले के संबंध में की जाती है। ऐसे मामले में, एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को केवल इसलिए अधिकार क्षेत्र के बिना नहीं माना जा सकता है क्योंकि पुलिस अधिकारी द्वारा जांच के बाद कार्यवाही शुरू की गई थी, जब उसके पास जांच करने का कोई अधिकार नहीं था। [664-ई]

3. रेलवे संपत्ति (गैरकानूनी कब्जा) अधिनियम, 1966 की धारा 8 (1) के तहत जांच करने वाले एक अधिकारी को दं.प्र.सं. के अध्याय XIV के तहत जांच करने वाले पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की सभी शक्तियाँ प्रदान नहीं किया गया है। उनके पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप पत्र दायर करने का कोई अधिकार नहीं था। अधिनियम का मुख्य उद्देश्य रेलवे संपत्ति से संबंधित अपराध की जांच और अभियोजन की शक्तियों को आर. पी. एफ. को उसी तरह प्रदान करना था जैसे उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क से संबंधित कानून के तहत अपराधों से संबंधित मामले में होता है। अधिनियम के तहत अपराध गैर-संज्ञेय हैं जिनकी जांच सीआरपीसी के तहत एक पुलिस अधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती है। जिसका परिणाम यह है कि इस अधिनियम के तहत किसी अपराध के लिए जांच की शुरुआत केवल एक अधिकारी आर. पी. एफ. की शिकायत के आधार पर की जा सकती है, जैसा कि वास्तव में इस मामले में किया गया था। (664-एच; 665-ए-बी] 662

बालकिशन ए. देवीदयाळ आदि बनाम महाराष्ट्र राज्य आदि, (1981) 1 एस. सी. आर. 175, विशिष्ट।

बिहार राज्य और अन्य बनाम गणेश चौधरी और अन्य, सी. आर. एल. 1997 की अपील संख्या 512-515 पर भरोसा करते हुए 02-05-1997 पर निर्णय लिया गया।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार 2000 का आपराधिक अपील सं. I 111-1112।

सी. आर. एल. में पटना उच्च न्यायालय के 14.10.99 दिनांकित निर्णय और आदेश से। एम. सं. 13671/95 और 1995 का 18609।

अपीलार्थी की ओर से बी. बी. सिंह और कुमार राजेश सिंह।

याचिकाकर्ताओं के लिए पी.एस. मिश्रा, एस. चंद्रशेखर, हिमांशु शेखर और विष्णु शर्मा।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सेठी,

प्रतिवादीगण, जो रेलवे के कर्मचारी हैं, उन्हें अवैध रूप से बिक्री के लिए रेलवे सीमेंट ले जाते समय 25.3.1987 को रंगे हाथों पकड़ा गया था। रेलवे संपत्ति (गैरकानूनी कब्जा) अधिनियम, 1966 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के तहत अपराधों की जांच के बाद अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ अपराध साबित हुए।आर. पी. एफ., समस्तीपुर के निरीक्षक एम. आई. खान द्वारा न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, समस्तीपुर की अदालत में अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ अधिनियम के तहत जांच रिपोर्ट (शिकायत) दायर की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने मजिस्ट्रेट के समक्ष इस आधार पर आरोपमुक्त करने का अनुरोध करते हुए आवेदन दायर किया कि रेलवे सुरक्षा बल के उप-निरीक्षक, जिन्होंने उनके खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया था, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (जिसे इसके बाद "संहिता" के रूप में संदर्भित किया गया है) के अर्थ में "पुलिस अधिकारी" नहीं थे और अदालत में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट पर, मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। मजिस्ट्रेट ने उनकी प्रार्थना को खारिज कर दिया जिसके खिलाफ उन्होंने मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय में याचिकाएं दायर कीं। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों-अभियुक्तों की याचिकाओं को स्वीकार कर लिया और इन अपीलों में विवादित आदेश के माध्यम से रेलवे मजिस्ट्रेट के समक्ष उनके खिलाफ लंबित कार्यवाही को रद्द कर दिया।हमने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील को सुना है और संहिता के अलावा अधिनियम के रिकॉर्ड और प्रासंगिक प्रावधानों का अध्ययन किया है। प्रत्यर्थियों की ओर से पेश हुए विद्वान अधिवक्ता पी.एस. मिश्रा ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि इन अपीलों में उच्च न्यायालय के आदेश को उचित नहीं ठहराया जा सकता है। हालाँकि, उन्होंने प्रार्थना की है कि चूंकि प्रतिवादी-अभियुक्त ने मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही को रद्द करने के लिए कई अन्य दलीलें उठाई थीं, इसलिए यह न्यायालय ऐसी याचिकाओं पर निर्णय लेने की वांछनीयता पर विचार कर सकता है या

जिन बिन्दुओ को उठाया गया है लेकिन निर्णय नही लिया गया है। निर्णय के लिए मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेज सकता है। अधिनियम की धारा 3 में रेलवे संपत्ति के गैरकानूनी कब्जे के लिए दंड का प्रावधान है। धारा 6 एक वरिष्ठ अधिकारी या बल के सदस्य को किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए अधिकृत करती है। जो अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध में संबंधित रहा है या जिसके खिलाफ मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और वारंट के बिना इस तरह से संबंधित होने का उचित संदेह मौजूद है।धारा 7 में प्रावधान है कि अधिनियम के तहत गिरफ्तार किया गया प्रत्येक व्यक्ति, यदि गिरफ्तारी बल के अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जाती है, तो ऐसे व्यक्ति को बिना किसी देरी के बल के निकटतम अधिकारी को भेजा जाएगा। अधिनियम की धारा 8 में प्रावधान हैः "गिरफ्तार व्यक्तियों के खिलाफ जांच कैसे की जाए-(1) जब ऐसे किसी व्यक्ति को बल के किसी अधिकारी द्वारा इस अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाता है या धारा 7 के तहत उसे भेजा जाता है, तो वह ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ आरोप की जांच करने के लिए आगे बढ़ेगा।

(2) इस उद्देश्य के लिए बल का अधिकारी उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और वही प्रावधानों के अधीन होगा जो पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी किसी संज्ञेय मामले की जांच करते समय दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के तहत प्रयोग कर सकता है और उसके अधीन हैः

बशर्ते कि-

(क) यदि बल के अधिकारी की राय है कि अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ पर्याप्त सबूत या संदेह का उचित आधार है, तो वह या तो उसे मामले में अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के सामने पेश होने के लिए जमानत पर स्वीकार करेगा, या उसे हिरासत में ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।

(ख) यदि बल के अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ कोई पर्याप्त सबूत या संदेह का उचित आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त व्यक्ति को मुचलका निष्पादित करने पर, प्रतिभू के साथ या उसके बिना रिहा कर देगा, जैसा कि बल

का अधिकारी निर्देश दे सकता है, यदि और जब भी आवश्यकता हो, अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित होने के लिए, और अपने आधिकारिक वरिष्ठ को मामले के सभी विवरणों की पूरी रिपोर्ट देगा।

इस मामले में, रेलवे की संपत्ति की जब्ती और आरोपी से पूछताछ के बाद, अधिनियम की धारा 3 के तहत मामला सं.- 14/87 अपराध दर्ज किया गया था। अभियुक्त बालेश्वर सिंह के बयान के अनुसार पहले से जब्त किए गए सीमेंट के अलावा सीमेंट के 136 बोरे की और बरामदगी की गई। श्री एम. आई. खान, आई. पी. एफ./एस. पी. जे. ने मामले की जांच की और मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत प्रस्तुत की। शिकायत की प्रति इस अपील के साथ अनुलग्नक पी-3 के रूप में संलग्न की गई है।अनुलग्नक पी-3 का अवलोकन स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह संहिता की धारा 173 के अर्थ के भीतर एक प्रतिवेदन नहीं थी, बल्कि मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर एक शिकायत थी, जाहिर तौर पर संहिता की धारा 200 के तहत। ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त के खिलाफ प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के तहत जारी की गई है। कल्पना के किसी भी विस्तार से, प्रदर्शनी पी-3 को संहिता की धारा 173 के अर्थ के भीतर एक प्रतिवेदन कहा जा सकता है। केवल इसलिए कि जांच बल के किसी सदस्य द्वारा की गई थी, जिसके पास कुछ समान शक्तियां हैं जो एक जांच अधिकारी के पास हैं, शिकायत को संहिता की धारा 173 के अर्थ के भीतर एक रिपोर्ट नहीं बनाएगा।

संहिता की धारा 2 (घ) शिकायत को परिभाषित करती है कि संहिता के तहत कार्रवाई करने के उद्देश्य से मजिस्ट्रेट को मौखिक या लिखित रूप से किया गया कोई भी आरोप, कि किसी व्यक्ति, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, ने अपराध किया है, लेकिन इसमें पुलिस प्रतिवेदन शामिल नहीं है। संहिता की धारा 2 के खंड (घ) के स्पष्टीकरण में कहा गया हैः "स्पष्टीकरण-एक रिपोर्ट ने एक मामले में एक पुलिस अधिकारी द्वारा बनाया गया जो बाद में खुलासा करता है, जांच के बाद, एक गैर-संज्ञेय कार्यालय के आयोग को एक शिकायत माना जाएगा; और जिस पुलिस अधिकारी द्वारा ऐसी प्रतिवेदन दी जाती है, उसे शिकायतकर्ता माना जाएगा। संहिता की धारा 2 (घ) में एक पुलिस प्रतिवेदन को एक मानित शिकायत के रूप में भी शामिल किया गया है यदि मामले की जांच एक पुलिस

अधिकारी द्वारा एक गैर-संज्ञेय अपराध से जुड़े मामले के संबंध में की जाती है।ऐसे मामले में, एक पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन को केवल इसलिए अधिकार क्षेत्र के बिना नहीं माना जा सकता है क्योंकि पुलिस अधिकारी द्वारा जांच के बाद कार्यवाही शुरू की गई थी, जब उसके पास जांच करने का कोई अधिकार नहीं था। कार्यवाही को रद्द करने के लिए, उच्च न्यायालय ने बालकिशन ए. देवीदयाल, आदि बनाम महाराष्ट्र राज्य, आदि मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। [1981 (1) एससीआर 175]। निर्भरता को गलत समझा गया प्रतीत होता है। उस मामले में अदालत ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए कहा, "इसलिए, आर. पी. एफ. के एक अधिकारी को साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अर्थ के भीतर एक 'पुलिस अधिकारी' नहीं माना जा सकता है और इसलिए, 1966 अधिनियम की धारा 8 (1) के तहत जांच के दौरान उसके द्वारा दर्ज किए गए किसी भी इकबालिया या आपत्तिजनक बयान को उक्त धारा के तहत साक्ष्य से बाहर नहीं किया जा सकता है। "जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, बालकिशन के मामले में इस अदालत ने यह भी कहा कि अधिनियम की धारा 8 (1) के तहत जांच करने वाले एक अधिकारी को संहिता के अध्याय XIV के तहत जांच करने वाले पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की सभी शक्तियां नहीं दी गई हैं। उनके पास संहिता की धारा 173 के तहत संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप पत्र दायर करने की कोई शक्ति नहीं है। अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आर. पी. एफ. में रेलवे संपत्ति से संबंधित अपराध की जांच और अभियोजन की शक्तियों को उसी तरह प्रदान करना था जैसे उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क से संबंधित कानून के तहत अपराधों से संबंधित मामले में किया जाता है। अधिनियम के तहत अपराध गैर-संज्ञेय हैं जिनकी जांच संहिता के तहत एक पुलिस अधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती है।परिणाम यह है कि इस अधिनियम के तहत जांच किए गए अपराध के लिए जांच की शुरुआत केवल बल के एक अधिकारी द्वारा शिकायत के आधार पर की जा सकती है, जैसा कि वास्तव में इस मामले में किया गया था।1997 की आपराधिक अपील सं. 512-515 में इस न्यायालय का निर्णय दिनांक 2.5.1997 (बिहार राज्य और अन्य बनाम गणेश चौधरी और अन्य) का भी यही प्रभाव है। श्री मिश्रा, विद्वान वरिष्ठ वकील ने जोरदार तर्क दिया कि मामले को अन्य आधारों के निर्णय के लिए उच्च न्यायालय में वापस भेज दिया जाए, जिसके आधार

पर कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय में दायर याचिका के कंडिका 27 में किए गए कथनों का उल्लेख करते हुए आग्रह किया कि चूंकि अभियुक्तों के खिलाफ मामले की सुनवाई 5 साल से अधिक समय से लंबित थी, इसलिए उनके खिलाफ कार्यवाही राज्य सरकार द्वारा कथित रूप से जारी अधिसूचना के तहत रद्द की जा सकती है। विद्वान वकील ने न तो हमें अधिसूचना दिखाई है और न ही कानून का अधिकार जिसके तहत राज्य सरकार द्वारा ऐसी अधिसूचना जारी की जा सकती थी। उन्होंने इस बात पर भी जोर देने की कोशिश की कि स्वीकार किए गए तथ्यों पर भी आरोपी के खिलाफ अधिनियम की धारा 3 के तहत कोई मामला नहीं बनाया गया था और उनके मुवक्किलों के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही अन्यथा कायम रहने वाला नही था। हमारी राय है कि इस स्तर पर इस तरह की याचिकाओं को हमारे समक्ष नहीं उठाया जा सकता है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मामले को उच्च न्यायालय में वापस नहीं भेजा जा सकता है कि प्रत्यर्थियों के खिलाफ कार्यवाही किसी न किसी बहाने से 13 साल की अवधि से अधिक समय तक चली है। हालाँकि, हमारी राय है कि प्रतिवादियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष मुकदमे के दौरान कानून के तहत उपलब्ध ऐसी सभी याचिकाओं को उठाने का वैधानिक अधिकार है। इस तरह की सभी दलीलें, जब उठाई जाती हैं, तो निचली अदालत द्वारा उचित रूप से विचार किया जा सकता है और उनका निपटारा किया जा सकता है। ऊपर जो कहा गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, इन अपीलों को उच्च न्यायालय के आदेश को दरकिनार करके और मजिस्ट्रेट के आदेश को बरकरार रखते हुए अनुमति दी जाती है, जो उसके समक्ष लंबित शिकायत में प्रतिवादियों को आरोपमुक्त करने से इनकार करता है। मजिस्ट्रेट को आगे मुकदमे में तेजी लाने का निर्देश दिया जाता है।

खण्डन (डिस्क्लेमर) :– स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।